

[2024] 11 एस. सी. आर. 1466 : 2024 आई. एन. एस. सी 891

रजनीश कुमार और एक अन्य

बनाम

वेद प्रकाश

(एस. एल. पी (दीवानी) संख्या:935-936/2021)

21 नवंबर 2024

[जे. बी. पारदीवाला और आर. महादेवन, जे. जे.]

विचार के लिए मुद्दा

क्या वादी को अपील में देरी के लिए सारा दोष वकील पर डालने की अनुमति दी जा सकती है।

हेडनोट्स

विलम्ब - विलम्ब की क्षमा - याचिकाकर्ता-वादीगण जवाबी दावे में पारित एकपक्षीय आदेश से असंतुष्ट थे और उन्होंने अपील के माध्यम से प्रथम अपीलीय न्यायालय के समक्ष उसे चुनौती दी थी - हालाँकि, अपील की समय सीमा 534 दिन थी - प्रथम अपीलीय न्यायालय ने अपील दायर करने में 534 दिनों की देरी को इस आधार पर माफ कर दिया कि वकील की ओर से लापरवाही के कारण वादी को नुकसान नहीं उठाना चाहिए - उत्तरदाता- प्रतिवादी ने इसे उच्च न्यायालय में चुनौती दी - उच्च न्यायालय ने अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित 534 दिनों के विलंब को माफ करने के आदेश को रद्द कर दिया।

अभिनिर्धारित किया गया: सारा दोष उस वकील के सिर पर डाल दिया गया है जो विचारण अदालत में याचिकाकर्ताओं की ओर से पेश हुआ था - इस न्यायालय ने पिछले कुछ समय से वादियों की ओर से अपने वकीलों पर अदालत के समक्ष कार्यवाही में उपस्थित होने में लापरवाही और असावधानी का आरोप लगाने की प्रवृत्ति देखी है -यदि एक क्षण के लिए यह मान भी लिया जाए कि संबंधित वकील लापरवाह या उपेक्षापूर्ण था, तो यह अपने आप में लंबे और अत्यधिक विलंब को माफ करने का आधार नहीं हो सकता, क्योंकि वादी का कर्तव्य है कि वह अपने अधिकारों के प्रति सतर्क रहे और उससे अपेक्षा की जाती है कि वह अपने कहने पर शुरू की गई अदालत में लंबित न्यायिक कार्यवाही के प्रति भी उतना ही सतर्क रहे - इसलिए, वादी को सारा दोष वकील के सिर पर डालने और किसी भी समय उसे अस्वीकार करने तथा राहत मांगने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए - उच्च

न्यायालय के आक्षेपित निर्णय में कोई कानूनी त्रुटि नहीं है जिसके कारण हस्तक्षेप किया जाए।[परिच्छेद 10,13]

कानूनी मामला उद्धृत

सलिल दत्ता बनाम टी. एम. & एम. सी. प्राइवेट लिमिटेड [\[1993\] 1 एस.सी.आर 794](#) : (1993) 2 एससीसी 185; भारत बैरल & ड्रम एम.एफ.जी. गो. बनाम कर्मचारी राज्य बीमा निगम [\[1972\] 1 एस.सी.आर 867](#) : (1971) 2 एस.सी.सी. 860- पर भरोसा जताया गया।

मुख्य शब्दों की सूची

विलंब; विलंब की क्षमा; अपील समय वर्जित: अधिवक्ता की लापरवाही; वादकारी

जिससे मामला उत्पन्न हुआ

असाधारण अपीलीय क्षेत्राधिकार: एस.एल.पी (सिविल) संख्या: 935-936/2021

हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय शिमला के दिनांक 09.12.2019 और 10.07.2020 के निर्णय और आदेश से क्रमशः सी.आर संख्या 96/2019 और आर.पी संख्या 5/2020.

पक्षकारों के लिए उपस्थिति

आदित्य धवन, श्रीमती किरण धवन, चंदर शेखर अशरी, अधिवक्तागण - याचिकाकर्ताओं के लिए।

राजेश गुप्ता, श्रीमती गुरप्रीत सिंह, सुमित आर. शर्मा, अधिवक्तागण - प्रतिवादी के लिए।

सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय/आदेश

आदेश

1. विशेष अनुमति याचिका (सिविल) संख्या 935/2021, सिविल पुनरीक्षण आवेदन संख्या 96/2019 में हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 09.12.2019 को पारित आदेश से उत्पन्न हुई है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने मूल प्रतिवादी/प्रति दावेदार द्वारा दायर सिविल पुनरीक्षण आवेदन को अनुमति दी और इस प्रकार जिला न्यायाधीश, शिमला द्वारा पारित आदेश को रद्द व् खारिज किया गया, जिसमें याचिकाकर्ताओं (मूल वादी) द्वारा अपील दायर करने में 534 दिनों से अधिक की देरी को माफ कर दिया गया था।
2. विशेष अनुमति याचिका (सिविल) संख्या 936/2021, उच्च न्यायालय द्वारा समीक्षा

याचिका संख्या 5/2020 दिनांक 10.07.2020 में पारित आदेश से उत्पन्न हुई है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने समीक्षा आवेदन को खारिज कर दिया था।

3. रिकार्ड पर उपलब्ध सामग्री से यह प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ताओं (मूल वादी) ने उत्तरदाता (प्रतिवादी) के विरुद्ध दीवानी मुकदमा दायर किया था। यहाँ प्रतिवादी ने उक्त मुकदमे में जवाबी दावा दायर किया था। दीवानी वाद को चूक के कारण खारिज कर दिया गया तथा याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत बहाली के आवेदन को भी चूक के कारण खारिज करने का आदेश दिया गया। प्रतिवादी के जवाबी दावे को उसी मुकदमे में पारित दिनांक 17.01.2015 के निर्णय और डिक्री द्वारा स्वीकार कर लिया गया।
4. जवाबी दावे में पारित एकपक्षीय आदेश से असंतुष्ट होकर यहाँ याचिकाकर्ताओं ने अपील के माध्यम से प्रथम अपीलीय न्यायालय के समक्ष उसे चुनौती दी। हालाँकि, अपील की समय सीमा 534 दिन थी।
5. प्रथम अपीलीय न्यायालय ने अपील दायर करने में 534 दिनों के विलम्ब को इस आधार पर माफ कर दिया कि अधिवक्ता की ओर से लापरवाही के कारण वादी को नुकसान नहीं उठाना चाहिए तथा न्यायालय को विलम्ब को माफ करने में उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।
6. यहाँ प्रतिवादी ने प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित विलम्ब को क्षमा करने के आदेश से असंतुष्ट होकर उसे उच्च न्यायालय में चुनौती दी। उच्च न्यायालय ने सिविल पुनरीक्षण आवेदन को स्वीकार कर लिया, जिसके तहत अपीलीय न्यायालय द्वारा 534 दिनों के विलंब को माफ करने संबंधी पारित आदेश को निरस्त कर दिया गया।
7. ऐसी परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता वर्तमान याचिकाओं के साथ इस न्यायालय के समक्ष हैं।
8. हमने पक्षकारों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है।
9. उच्च न्यायालय ने अपने आक्षेपित आदेश में निम्नलिखित टिप्पणी की:-
 14. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि प्रतिवादियों को न केवल दिनांक 22.3.2012 को प्रति-दावे के लंबित होने की पूरी जानकारी थी, फिर भी इस तथ्य को जानबूझकर और स्वेच्छा से छुपाया गया है और बहाली के लिए आवेदन में इसका उल्लेख नहीं किया गया है। वास्तव में सारा दोष उस पूर्व वकील पर डाल दिया गया है जो उनका प्रतिनिधित्व कर रहा था।

X X X X

22. चूंकि प्रतिवादियों ने न्यायालय में सद्भाव से आवेदन नहीं दिया था, बल्कि उन्होंने भौतिक तथ्यों को जानबूझकर छिपाया था, जबकि उन्हें कम से कम दिनांक 22.03.2012 को प्रति-दावे के लंबित होने की जानकारी थी और इस प्रकार न्यायालय से अनुचित लाभ प्राप्त करने का प्रयास किया, वह भी पिछले वकील पर गंभीर आरोप लगाकर, प्रतिवादियों/वादी के पक्ष में कोई रियायत तो दूर, विवेक का प्रयोग भी नहीं किया जा सकता था, वह भी 534 दिनों से अधिक की देरी को माफ करने के लिए।”

10. ऐसा प्रतीत होता है कि सारा दोष उस वकील पर डाल दिया गया है जो विचारण अदालत में याचिकाकर्ताओं की ओर से पेश हुआ था। हमने पिछले कुछ समय से यह प्रवृत्ति देखी है कि वादीगण अपने वकीलों पर अदालत की कार्यवाही में लापरवाही और असावधानी का आरोप लगाते हैं। यदि हम एक क्षण के लिए यह मान भी लें कि संबंधित वकील लापरवाह या उपेक्षापूर्ण था, तो यह अपने आप में लंबे और अत्यधिक विलंब को माफ करने का आधार नहीं हो सकता, क्योंकि वादी का यह कर्तव्य है कि वह अपने अधिकारों के प्रति सजग रहे और उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने आदेश पर शुरू की गई अदालत में लंबित न्यायिक कार्यवाही के प्रति भी उतना ही सजग रहे। इसलिए, वादी को सारा दोष वकील के सिर पर डालने और किसी भी समय उसे अस्वीकार करने तथा राहत मांगने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।
11. उपर्युक्त संदर्भ में, हम सलिल दत्ता बनाम टी.एम. एवं एम.सी. प्राइवेट लिमिटेड के मामले में इस न्यायालय के निर्णय का उल्लेख कर सकते हैं, जो (1993) 2 एससीसी 185 में रिपोर्ट किया गया था, जिसमें इस न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की थी:

“8. अधिवक्ता पक्षकार का एजेंट है। उसे दिए गए प्राधिकार की सीमाओं के भीतर किए गए उसके कार्य और कथन, प्रमुख व्यक्ति अर्थात् उसे नियुक्त करने वाले पक्ष के कार्य और कथन हैं। यह सही है कि कुछ स्थितियों में, न्यायालय न्याय के हित में, अधिवक्ता की लापरवाही और/या दुराचरण के बावजूद, बर्खास्तगी आदेश या एकपक्षीय डिक्री को रद्द कर सकता है, जहां उसे लगता है कि मुवक्किल एक निर्दोष वादी था, लेकिन ऐसा कोई आत्यन्तिक नियम नहीं है कि कोई पक्ष किसी भी समय अपने अधिवक्ता को अस्वीकार कर सकता है और राहत मांग सकता है। ऐसी कोई आत्यन्तिक प्रतिरक्षा मान्यता प्राप्त नहीं की जा सकती। इस तरह के आत्यन्तिक नियम से प्रणाली का कार्य करना अत्यंत कठिन हो जाएगा। रफीक [ए.आई.आर

1981 एस.सी 1400] में की गई टिप्पणियों को एक आत्यन्तिक प्रस्ताव के रूप में नहीं समझा जाना चाहिए। जैसा कि हमने ऊपर बताया है, यह एक चल रहा मुकदमा था, जिसे सात वर्ष बीत जाने के बाद अंतिम सुनवाई के लिए रखा गया था। यह शहर से दूर रहने वाले किसी ग्रामीण द्वारा दायर की गई दूसरी अपील नहीं थी, जहां अदालत स्थित है। प्रतिवादी भी कोई देहाती अज्ञानी ग्रामीण नहीं है, बल्कि एक निजी लिमिटेड कंपनी है जिसका मुख्यालय कलकत्ता में ही है और जिसका प्रबंधन शिक्षित व्यवसायियों द्वारा किया जाता है, जो जानते हैं कि उनका हित कहां है। यह स्पष्ट है कि जब अंतिम सुनवाई के लिए मुकदमा लेने से पहले उनके आवेदनों पर सुनवाई नहीं की गई तो वे नाराज हो गए और उन्होंने अदालत में पेश होने से इनकार कर दिया। हो सकता है कि यह उनकी विलंबकारी रणनीति का हिस्सा हो, जैसा कि वादी ने आरोप लगाया है। शायद नहीं भी हो सकता है। लेकिन एक बात स्पष्ट है कि उन्होंने अदालत के साथ सहयोग न करने का फैसला किया। न्यायालय के प्रति ऐसा रुख अपनाने के बाद प्रतिवादी को न्यायालय से रियायत मांगने का कोई अधिकार नहीं है। सारा दोष वकील पर डालना तथा ऐसा दिखाना कि जैसे उन्हें कार्यवाही की प्रकृति या महत्व के बारे में पूरी तरह से जानकारी नहीं थी, एक ऐसा सिद्धांत है जिसे स्वीकार नहीं किया जा सकता तथा इसे स्वीकार भी नहीं किया जाना चाहिए।”

(जोर दिया गया)

12. सीमा कानून के संबंध में, हम भारत बैरल और इम एम.एफ.जी गो. बनाम कर्मचारी राज्य बीमा निगम (1971) 2 एस.सी.सी 860 में इस न्यायालय के निर्णय का उल्लेख कर सकते हैं, जिसमें इस न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया था :-

“सीमा अवधि लागू करने की आवश्यकता यह सुनिश्चित करने के लिए है कि कार्रवाई एक विशेष अवधि के भीतर शुरू की जाए, सबसे पहले दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए प्रतिवादी को उसके खिलाफ दावे का मुकाबला करने में सक्षम बनाया जाए; दूसरा, इस सिद्धांत को प्रभावी करना कि कानून ऐसे व्यक्ति की सहायता नहीं करता जो निष्क्रिय है और अपने अधिकारों के बारे में कोई ध्यान नहीं देता है, जब उसे चुनौती दी जाती है या विवाद उत्पन्न होता है तो वह न्यायालय में दावा किए बिना अपने अधिकारों को निष्क्रिय रहने देता है। वह सिद्धांत जो इस नियम का आधार बनता है, वह कहावत "कानून केवल उन लोगों की सहायता करता है

जो सतर्क रहते हैं, न कि उन लोगों की जो अपने अधिकारों के प्रति लापरवाह रहते हैं" में व्यक्त किया गया है। इसलिए, सीमाओं के कानून का उद्देश्य किसी व्यक्ति को उचित समय के भीतर कार्रवाई के अपने अधिकार का प्रयोग करने के लिए मजबूर करना है, साथ ही पुराने, नकली या धोखाधड़ी वाले दावों को हतोत्साहित करना और उनका दमन करना है।"

(जोर दिया गया)

13. उपरोक्त के मद्देनजर, हमें कोई त्रुटि नहीं दिखती है जबकि उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय में किसी भी कानूनी त्रुटि की बात तो दूर की बात है, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत हमारे अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में हस्तक्षेप का औचित्य सिद्ध करती हो।
14. नतीजतन, ये याचिकाएं विफल हो जाती हैं और खारिज कर दी जाती हैं।
15. लंबित आवेदन, यदि कोई हो, का निपटारा कर दिया जाता है।

मामले का परिणाम: याचिकाएं खारिज कर दी गईं।

†हेडनोट अंकित ज्ञान द्वारा तैयार किए गए।

अनुवादकर्ता:
नीरज ठाकुर (पुनरीक्षक)